वैदिक व्याख्यान माला - चौदहवाँ व्याख्यान

त्रैत, द्वैत, अद्वैत

और

एकत्वके सिद्धान्त

लेखक

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

अध्यक्ष- स्वाध्याय-मण्डल, साहित्यवाचस्पति, गीतालंकार

स्वाध्याय-मंडल, पारडी (जि. सूरत)

मूल्य छः आने

ॐ

त्रैत, द्वैत, अद्वैत और एकत्वके सिद्धान्त

बहुत समयके पूर्वसे अर्थात् अनेक शताब्दियोंसे "द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत" ये वाद भारतवर्षमें प्रचलित रहे हैं। इनमें 'त्रैत और एकत्व' ये दो वाद सांप्रतमें और मिले हैं। "अद्वैत, विशिष्टाद्वैत और शुद्धाद्वैत" ये तीन वाद अद्वैतवादके अन्दर संमिलित हो सकते हैं। यद्यपि इनमें परस्पर थोडा भेद है, तथापि ये तीनों अद्वैतका ही प्रतिपादन करते हैं। श्री शंकराचार्यने अद्वैतका प्रतिपादन किया, श्री रामानुजाचार्यने विशिष्टाद्वैत माना, और श्री वल्लभाचार्यने शुद्धाद्वैत स्वीकारा है। इनमें परस्पर मन्तव्यकी भिन्नता तो है ही, पर इन तीनोंका सिद्धान्त अद्वैत है, इसमें संदेह नहीं। ये अपने सिद्धान्तको "अद्वैत" मानते हैं, 'एकत्व' नहीं मानते।

इस शताब्दीमें 'त्रैत' और 'एकत्व' ये दो वाद जनताके सामने आगये हैं। द्वैतवाद तो माध्वसंप्रदायका ही वाद है। इनके अनुयायी भी कन्नड आदि प्रान्तोंमें बहुत हैं। श्री मध्वाचार्य शुद्ध द्वैतवादी थे। मुक्तिमें भी जीव विष्णुरूप तो बनता है, परंतु विष्णुसे-परमेश्वरसे सदा पृथक् रहता है, यह इनका सिद्धान्त है। इनकी संमतिसे सब प्रकारके अद्वैतवादी या एकत्ववादी नरकगामी हैं और अद्वैतवादियोंकी संमतिसे सब द्वैतवादी नरकगामी हैं !!! एकत्ववादी अद्वैतमें संमिलित हो सकते हैं और त्रैतवादी द्वैतमें संमिलित हो सकते हैं।

षट्पदार्थवादी, पञ्चपदार्थवादी, चतुर्विंशति पदार्थवादी, तथा ऐसे अनेक पदार्थवादी द्वैत वा त्रैतमें समाविष्ट हो सकते हैं। इस तरह 'एकपदार्थवादी' और 'अनेक पदार्थवादी' ऐसे दो ही भेद इन सबके होते हैं। अब इनका विचार इस लेखमें करना है।

'एकत्व, अद्वैत, द्वैत और त्रैत' ये वाद परस्पर विभिन्न हैं, वा ये केवल दृष्टिबिन्दुके ही भेद हैं इसका विचार इस लेखमें करना है। प्रायः सभी पाठक कहेंगे, कि इनमें मन्तव्यका भेद स्पष्ट दिखाई देता है, अतः इनमें मन्तव्यकी भिन्नता है वा नहीं, इसका विचार करनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं है। पाठकोंका यह मत हमें विदित है। पाठकोंका ऐसा मत होने पर भी हम यह लेख उनके सामने रखना चाहते हैं। पाठक इसका विचार करें।

भिन्नताकी सापेक्षता

किसी समय भिन्नता वस्तुगत होती है। जैसा मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष आदिकी भिन्नता है। यह वस्तुगत भिन्नता है। दूसरी भिन्नता सापेक्षभिन्नता है। एक तरुण प्रथम कक्षामें पढता है, दूसरा ७ वीमें पढता है और तीसरा १४ वीमें पढता है। सातवींका तरुण प्रथम कक्षावालेसे अधिक ज्ञानी है, और चौदवींवालेसे कम ज्ञानी है। एक ही मनुष्य इस तरह अपेक्षाकृत छोटा या बडा कहा जाता है। वस्तुतः वह मध्यम स्थानमें रहनेवाला मनुष्य जैसा है वैसा ही है, परंतु अपेक्षाके कारण छोटा या बडा कहा जाता है। यह अपेक्षाकृत भेद है, यह वस्तुगत भेद नहीं है। इससे सापेक्षभेदका स्वरूप ध्यानमें आ सकता है।

इस लेखका विचारणीय प्रश्न यही है कि 'त्रैत, द्वैत, अद्वैत' में वस्तुगत भेद है, या सापेक्षताके कारण भेदकी प्रतीति होती है।

वेद, उपनिषद् और गीतामें इस विषयके संबंधमें किस तरहका प्रतिपादन किया है, इसका विचार इस लेखमें करना है। प्रथम श्रीमद्भगवद्गीताके वचनोंका विचार करेंगे, पश्चात् उपनिषदोंके वचनोंका और अन्तमें वेदके मंत्रोंका विचार करेंगे—

एकत्वका प्रतिपादन

श्रीमद्भगवद्गीतामें एकत्व बोधक वचन यह है—

वासुदेवः सर्वं। भ० गी० ७।१९

'यह सब वासुदेवका रूप है।' यह सब विश्व विष्णुका रूप है। यह निःसन्देह एकत्वका प्रतिपादन करनेवाला वचन है। अब द्वैतका प्रतिपादन करनेवाला वचन देखिये–

द्वैतका प्रतिपादन

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥
भ० गी० १५।१६

'इस लोकमें– इस विश्वमें क्षर और अक्षर ये दो पुरुष हैं। ये जो सब भूत हैं वे सब क्षर हैं और कूटस्थ पुरुष अक्षर हैं।' इस तरह यहां द्वैतका प्रतिपादन स्पष्ट है। इसीके पर्याय यहां देते हैं जो शास्त्रोंमें प्रसिद्ध हैं—

क्षर	अक्षर
जड	चेतन
प्रकृति	पुरुष
क्षेत्र	क्षेत्रज्ञ
शरीर	शरीरी
अचेतन	चेतन

इस तरहके नाम अनेक स्थानोंपर आ गये हैं। ये पद द्वैतका वर्णन करते हैं। यदि द्वैतका ही सिद्धान्त गीताका माना जाय, तो त्रैतका वचन भी इसी गीतामें देखिये—

उत्तमः पुरुषस्त्वन्य परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥१७॥
यस्मात् क्षरमतीतोऽहं अक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥१८॥
भ० गी० १५

"इन क्षर-अक्षरोंसे भिन्न एक तीसरा उत्तम पुरुष है, जिसको अव्यय परमात्मा कहते हैं जो ईश्वर इन तीनों लोकोंमें व्यापकर सबका धारण पोषण करता है। जिससे यह क्षरसे श्रेष्ठ और अक्षरसे उत्तम है, इसलिये इसको लोकमें और वेदमें पुरुषोत्तम कहते हैं।"

इस तरह इस गीतामें (१) एकत्ववाद है, (२) द्वैतवाद है और (३) त्रैतवाद भी है। एक ही ग्रंथमें ये तीनों वाद, किस तरह संगत हो सकते हैं? ऐसा लोग पूछते हैं!

यहां शंका होती है कि गीताके सिद्धान्तानुसार पुरुष एक है, दो हैं वा तीन हैं? ऐसे वचनोंको देखकर कई कहते हैं कि गीतामें परस्पर विरुद्ध वचन हैं, अथवा इस गीतामें पीछेसे प्रक्षेप हुआ है। गीतामें या किसी ग्रंथमें प्रक्षेप है ऐसा कहना, अथवा परस्पर विरोध है ऐसा एकदम कह देना, अयोग्य है। किसी एक दृष्टिबिन्दुसे जो सुसंगत प्रतीत होगा, वही दूसरी दृष्टीसे प्रक्षिप्त या असंगत भी प्रतीत होगा। इसलिये हमें यह उचित है कि हम किस दृष्टिबिन्दुसे ये वाक्य लिखे गये हैं, सह एकत्वकी परीक्षा करें और लेखकके दृष्टिबिन्दुको जाननेका यत्न प्रथम करें।

उपनिषदोंमें एकत्ववाद

श्रीमद्भगवद्गीतामें जिस तरह "वासुदेवः सर्वं" कहा है, वैसे ही वाक्य उपनिषदोंमें भी हैं। इस एकत्वकी सिद्धता प्रथम करके देखनी चाहिये और इन वचनोंका भाव समझनेका यत्न करना चाहिये। देखिये ये वचन—

ओंकार एवेदं सर्वं। छां० उ० २।२३।४
गायत्री वा इदं सर्वं। छां० ३।१२।१
सर्वं खलु इदं ब्रह्म। छां. ३।१४।१
प्राणो वा इदं सर्वं भूतं। छां. ३।१५।४
अहमेव इदं सर्वं। छां. ५।२।६; ७।२५।१
एतदात्म्यमिदं सर्वं। छां. ६।९।४
स एव इदं सर्वं। छां. ७।२५।१
आत्मा वा इदं सर्वं। छां. ७।२५।२
स इदं सर्वं भवति। बृ. उ. १।४।१०
इदं सर्वं यदयमात्मा। बृ. २।४।६; ४।५।७; नृ. उ.५
इदं अमृतं, इदं ब्रह्म, इदं सर्वम्। बृ. २।५।१
एतत् ब्रह्म, एतत् सर्वं। बृ. ५।३।१
ओमितीदं सर्वं। तै. उ. १।८।१
ब्रह्म खलु इदं वाव सर्वं। मुण्डक १; नृ. पू. २।२; ४।१; नृ. उ. १
सर्वमोङ्कार एव। मुण्ड० १
सर्वं ह्येतद्ब्रह्म। मुण्ड० २
सर्वं ह्ययमात्मा। नृ. उ. ७
ब्रह्मैवेदं सर्वं सच्चिदानन्दरूपं। नृ. उ. ७
ब्रह्म वा इदं सर्वं। नृ. उ. ७
सद्धीदं सर्वं, चिद्धीदं सर्वं। नृ. उ. ७
आत्मा हीदं सर्वं सदेव। नृ. उ. ८
सूक्ष्मः पुरुषः सर्वं। शिरस् उ० ३
नारायण एवेदं सर्वं। नारा० उ. २

इन उपनिषदोंके वचनोंमें कहा है कि जो ओंकार, गायत्री, प्राण, अहं, सः, आत्मा, ब्रह्म, सत्, सूक्ष्मः पुरुषः, नारायणः आदि नामोंसे बताया जाता है वह यह दृश्यमान संपूर्ण विश्व ही है। ये वचन स्पष्ट हैं और यहां संदेहके लिये कोई स्थान नहीं है। अब इन वचनोंके साथ वेदके वचन देखिये–

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्। ऋ.१०।९०।२
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्। यजु. ३१।२
काण्व यजु. ३५।२, साम ६१९; अथर्व १९।६।४;
तै. आ. ३।१२।१

सर्वाणि भूतानि आत्मा एव अभूत्।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।
वा० य. ४०।७; ईश उ. ७

जो भूतकालमें हो चुका था, जो वर्त्तमान कालमें है और जो भविष्य कालमें होगा वह सब पुरुष अथवा आत्मा ही है।

ये सब वचन 'एकत्व' वादकी सिद्धि करनेवाले हैं। जो भी कुछ यहां है वह सब ईश्वरका रूप है। जो गीताके "वासुदेवः सर्वं" (७।१९) इस वचनका भाव है वही इन उपनिषद्वचनोंका और इन वेदके मंत्रोंका भाव है। वेदमें तो 'एकत्वं अनुपश्यतः' एकत्वका दर्शन कराया है।

अद्वैत और एकत्व

अद्वैतवाद और एकत्ववाद ये दो पद पृथक् अर्थ बतानेवाले हैं। अद्वैतका अर्थ 'दो नहीं' ऐसा है। और 'एकत्व' का अर्थ 'निःसंदेह एक' ऐसा है। अद्वैतवादी 'माया' को मानते हैं। एकत्ववादी मायाको नहीं मानते। इसलिये एकत्ववाद पृथक् है और अद्वैतवाद पृथक् है। वेदमंत्रोंमें "तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।" (वा. य. ४०।७, काण्व ४०।७; ईश ७) एकत्व पद है, परंतु अद्वैतपद नहीं है। पाठक इस भेदको समझें और एकत्व तथा अद्वैतको एक ही न समझें।

गीतामें 'वासुदेवः सर्वं' (७।१९) कहा है वैसा ही वेदमें भी 'पुरुषः सर्वं' (ऋ. १०।९०।२) कहा है। तथा गीतामें—

अनन्तरूप, विश्वरूप। गी. ११।१६
सर्व, सर्वः। गी. ११।४०

'अनन्तरूपी, विश्वरूपी ईश्वर है, अतएव वह सर्व है।' अर्थात् विश्वरूप और सर्वका अर्थ एक ही है। विश्वरूप, अनंतरूप, सर्वरूप ये सब पद एक ही भाव बताते हैं। देखिये—

त्वष्टारं... विश्वरूपं उपह्वये। ऋ. १।१३।१०
विश्वरूपं बृहन्तम्। ऋ. १।३५।४
विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ। ऋ. ३।३८।४;
वा. य. ३३।२२

विश्वरूपः पुपोष प्रजाः। ऋ. ३।५५।१९
वृषभो विश्वरूपः। ऋ. ३।५६।३
विश्वरूपं बृहस्पतिं। ऋ. ३।६२।६
त्वष्टा सविता विश्वरूपः। ऋ. १०।१०।५
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूपः। ऋ. ६।४७।१८
पुरुरूप उग्रः (ईशानः)। ऋ. २।३३।९
पुरुरूपं (अग्निं)। ऋ. ५।८।१
ज्योतिरसि विश्वरूपं। वा. य. ५।३५
त्वष्टारं इन्द्रं पुरुरूपं। वा. य. २८।९
ब्रह्म पुरुरूपं वि तिष्ठे। अथर्व० ९।१५।१९

इस तरह वेदमंत्रोंमें विश्वरूपी (त्वष्टा) सर्व स्रष्टा ईश्वर, पोषणकर्ता परमेश्वर, (बृहस्पतिः) ज्ञानी ईश्वर, इन्द्र, ज्योतीरूप अथवा ब्रह्म है ऐसा कहा है। जो विश्वरूपी होगा, वही सर्वरूपी होगा और उसीको 'सर्व' अथवा 'विश्व' कहा जा सकता है। इस रीतिसे यह स्पष्ट हो जाता है कि जो पद वेदके मंत्रोंमें हैं वे ही पद उपनिषदोंमें हैं और वे ही पद उसी अर्थमें गीतामें लिये हैं। इस कारण जो उपपत्ति वेदमंत्रकी लग सकती है वही उपनिषद् और गीताके वचनोंकी भी लग सकती है। अतः इस गीतामें आये वचनोंको प्रक्षिप्त या असंगत कहनेकी आवश्यकता नहीं है। वेदमें भी वैसे ही अर्थके मंत्र और पद हैं इसलिये यदि संगति लगेगी तो वेदमंत्र-उपनिषद्-गीताकी इकट्ठी ही लगेगी और न लगनी होगी तो किसीकी भी नहीं लगेगी। परंतु वेदमंत्रोंकी असंगति, या वेदमंत्रोंमें प्रक्षेप आदि कहनेके लिये कोई तैयार नहीं होगा। इसलिये जिस पद्धतिसे वेदमंत्रोंकी संगति लगेगी उसी पद्धतिसे उपनिषद् और गीताके वचनोंकी भी संगति लग सकेगी।

यहांतक वेदमंत्रोंमें जहां 'एकत्ववाद' है वे मंत्र हमने देखे। अब द्वैत और त्रैतवादके वेदमंत्र हम देखते हैं—

त्रैतवादके मंत्र

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि-
षस्व जाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्न-
न्नन्यो अभिचाकशीति ॥ ऋ. १।१६४।२०; अथर्व
९।९।२०; निरु० १४।३०

"दो पक्षी साथ रहनेवाले मित्र एक ही वृक्षपर पास पास बैठे हैं। उनमें एक मीठाफल खाता है और दूसरा फल न खाता हुआ चमकता रहता है।"

इस मंत्रमें "दो पक्षी जीव और ईश्वर हैं और ये दो पक्षी प्रकृतिरूप वृक्षपर बैठे हैं" ऐसा यहां कहा है। यहां तीन पदार्थ कहे हैं। इसलिये यहां त्रैतवाद स्पष्ट दीखता है। पक्षी चेतन हैं और हलचल करनेवाले हैं, अतः ये 'सुपर्ण' (पक्षी) निःसंदेह जीव और ईश्वर हैं और ये चेतन और सतत प्रयत्नशील हैं। वृक्ष अचल वस्तुका वाचक है, अर्थात् यह वृक्ष प्रकृतिका वाचक है। इस तरह प्रकृति, जीव और ईश्वरका बोध इस मंत्रसे होता है। इस कारण इस मंत्रको त्रैतमतका बोधक मान सकते हैं।

इसी मंत्रमें चेतन पक्षी (सुपर्ण) हैं और अचल जड वृक्षका वर्णन भी है। इस कारण जड चेतन, क्षर अक्षर, प्रकृति पुरुष इस द्वन्द्वका बोधक होनेके कारण यह द्वैतबोधक मंत्र है ऐसा भी कह सकते हैं।

एक ही सूक्तमें ये वर्णन वेदोंमें हैं, इसके एक दो उदाहरण अब देखिये—

एक ही सूक्तमें तीनों वाद

ईशावास्यं इदं सर्वं। वा. यजु. ४०।१; ईश० १

'ईश्वर इस सब विश्वमें व्यापता है।' यहां 'ईश' एक पदार्थ है और 'इदं' वाचक 'विश्व' दूसरा पदार्थ है। यह वर्णन निःसंदेह द्वैतका वर्णन है। इसी सूक्तमें और देखिये-

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मनि एव अनुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥
वा० य० ४०।६; ईश ६

'जो सब भूत आत्मामें और आत्माको सब भूतोंमें देखता है।' इसमें 'आत्मा और भूत' ये दो पदार्थ माननेसे यह मंत्र द्वैतका प्रतिपादन करता है। तथा 'आत्मा' से जीवात्मा-परमात्माका बोध होता है, इस कारण यही मंत्र त्रैतमतका भी प्रतिपादन करता है ऐसा कह सकते हैं। अब इसी सूक्तमें एकत्ववादका प्रतिपादन देखिये—

यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मा एव अभूत्
विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक एकत्व-
मनुपश्यतः ॥ वा. य. ७; ईश० ७

'जिस विज्ञानी पुरुषको सब भूत आत्मा ही हो गये, उस एकत्वका दर्शन करनेवालेके लिये शोक और मोह कैसे प्राप्त होंगे?' अर्थात् वह (एकत्वं अनुपश्यतः) एकत्व दर्शन करनेवाला शोक मोहसे दूर होगा। यहां 'सब भूत आत्मा ही हो गये' यह वाक्य 'यह सब निःसंदेह ब्रह्म है' इस अर्थका ही बोधक है।

सर्वाणि भूतानि आत्मा एव अभूत्।
इदं सर्वं खलु ब्रह्म एव ॥

इन दोनों वाक्योंका भाव एक ही है और ये दोनों एकत्ववादका प्रतिपादन करते हैं। यजुर्वेदके चालीसवें अध्यायके ही ये तीनों मंत्र हैं। एक ही इस आत्मसूक्तमें द्वैत, त्रैत और एकत्वका प्रतिपादन है। जैसे गीतामें ये तीनों वाद हैं वैसे ही इस ईश उपनिषद्में अथवा यजुर्वेदके ४० वें अध्यायमें- आत्मसूक्तमें ये तीनों वाद हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि किसी विशेष दृष्टिबिन्दुसे ही इन वचनोंका विचार करना चाहिये। अब और एक सूक्त देखिये—

पुरुष एव इदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यं।
ऋ. १०।९०।२

'पुरुष ही यह सब है जो भूतकालमें था और जो भविष्यमें होगा,' और जो वर्तमान कालमें है। तीनों कालोंमें जो है वह पुरुष, परमेश्वर ही है। यह एकत्ववादका मंत्र है। यहां 'पुरुष' शब्द 'प्रकृति-पुरुष' मेंसे पुरुष, अर्थात् केवल चेतन आत्माका वाचक माननेसे यह मंत्र एकत्ववादका प्रतिपादन करता है ऐसा सिद्ध होगा। परंतु 'पुरुष' पदका अर्थ (पुरि शेते) प्रकृतिमें व्यापनेवाला ऐसा माननेसे यह 'पुरुष' पद ही 'प्रकृति-पुरुष' का वाचक होता है अर्थात् यह 'पुरुष' पद ही द्वैतका अथवा त्रैतका प्रतिपादक हो जाता है। पुरुष जीव और ईश्वरका समानतया बोध करता है। इससे द्वैत तथा त्रैतका बोध यह मंत्र करता है। इसी सूक्तमें और देखिये—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
ऋ. १०।९०।१

' हजारों आंख, हजारों बाहु, हजारों सिर और हजारों पांवों वाला यह पुरुष है।' यहां हजारों प्राणियोंके शरीर परमात्माके तथा जीवात्माके शरीर हैं ऐसा वर्णन है। यहां जीवोंकी अनंत सत्ता वर्णन की है, और इन सबका अन्तर्भाव परमेश्वरके विश्वशरीरमें होनेसे यह सब संसार परमेश्वरका रूप है, यह एकत्ववाद भी हुआ, और अनंत जीवात्माके शरीर भी हुए और एक परमात्मा और जड सृष्टीको निर्माण करनेवाली जड प्रकृति यह द्वैत और त्रैत भी इसी सूक्तमें प्रतिपादित हुआ। तथा—

त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः
पादोऽस्येहाभवत् पुनः। ऋ. १०।९०।४

' इस पुरुषके तीन भाग ऊपर मूल स्वरूपमें हैं और इसका एक अंश यहां वारंवार विश्वरूप बनता है।' ये सब वर्णन स्पष्ट हैं और इस तरह एकत्ववाद, द्वैतवाद और त्रैतवाद वेदके एक ही सूक्तमें है। इसलिये ये वचन विशेष दृष्टिबिन्दुसे ही देखने चाहिये।

' एकं सत् ' (ऋ० १।१६४।४६) इस मंत्रमें एकत्ववाद है और इस मंत्रमें द्वैत तथा त्रैतवाद भी है। जो विश्वरूप देवताका वर्णन करनेवाले मंत्र हैं वे एकत्ववादके ही मंत्र हैं, परंतु जिस मंत्रमें ' पुरुष ' देवता है, वह ' पुरि वसति इति पुरुषः ' इस व्युत्पत्तिसे ' पुरि और उसमें वसनेवाला ' ऐसे दो पदार्थोंका बोध करता है। इसलिये पुरुष देवता वाले मंत्र द्वैतवादके बोधक हैं। अस्तु इस तरह ' एकत्व, द्वैत और त्रैत ' का बोध करनेवाले वेदवचन जैसे हैं वैसे ही उपनिषदोंमें और वैसे ही गीतामें भी समानतया हैं। गीता, उपनिषद और वेदमंत्र इन तीनों स्थानोंमें ' एकत्व, द्वैत और त्रैतवाद ' के वचन मिलेजुले हैं। इसलिये गीतामें ही परस्पर विरुद्ध वचन हैं, या प्रक्षिप्त वचन हैं, ऐसा कोई नहीं कह सकते। यदि गीताके वचनोंको हमने ' परस्पर विरुद्ध अथवा प्रक्षिप्त ' कहा तो वैसा ही उपनिषदों और वेदमंत्रोंको भी कहना पडेगा। पर ऐसा वेद मंत्रोंको कहना दुःसाहस है। इसलिये इस विषयमें अधिक खोज करनी चाहिये।

इस विषयमें श्वेताश्वतर उपनिषदमें एकवचन बडा मनन करने योग्य है वह अब देखिये—

तीनोंका विन्दन

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशावजा ह्येका भोक्तृ-
भोग्यार्थयुक्ता। अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो
ह्यकर्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत्॥ श्वे. १।९

एक ज्ञानी ईश्वर है और दूसरा अज्ञानी जीव है। ये दोनों अजन्मा हैं, इनमें एक ईश है और दूसरा अनीश अर्थात् असमर्थ है। इनके अतिरिक्त एक और अजन्मा प्रकृति है वह भोक्ता जीवोंके भोग भोगनेके लिये नाना पदार्थ देती है। एक विश्वरूप अनन्त आत्मा अकर्ता है। ये तीन पदार्थ जब एकत्र मिलते हैं तब उसको ब्रह्म कहते हैं। यहां जो कहा है वह नीचे कोष्टकमें देते हैं।

ज्ञ+अज्ञ	अजा+विश्वरूप आत्मा
ईश+अनीश	प्रकृति+पुरुष
ईश+जीव	अनन्त+सान्त

विश्वरूप परमात्मा, अल्प प्रमाणवाला जीवात्मा, और भोग्य प्रकृति ये तीन पदार्थ इस मंत्रमें कहे हैं। ये तीनों पदार्थ " त्रयं यदा विन्दते, एतत् ब्रह्म " जब मिल जाते हैं, एक रूपमें मिलते हैं, उस विन्दनको ब्रह्म कहते हैं। तथा और देखिये—

भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा
सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्॥ श्वे० १।१२

" भोक्ता जीव, भोग्य प्रकृति और प्रेरक ईश्वर इन तीनोंका मनन करके यह त्रिविध ब्रह्म है ऐसा कहते हैं।"

यह तीनोंका विन्दन किस तरह होता है। विन्दनका अर्थ ' ज्ञानसे बुद्धिसे या मननसे जानना या समझना ' है। तीनोंका पृथक् भान भी होता है और तीनोंके एकत्वका भी भान होता है। यह विन्दन क्या है, कैसा होता है और किस तरह अनुभवमें आता है इसका मनन करना चाहिये। इसका विचार इस तरह किया जाता है।

एकमें तीन और तीनोंका एक

यह एक सापेक्ष दर्शनका शाश्वत नियम है कि एकमें तीन भाव होते हैं और तीनों भावोंमें मिलकर एकका

संपूर्ण दर्शन हो जाता है। किसीका संपूर्ण दर्शन करना हो तो उसको तीनों भावोंमें ही देखना चाहिये।

किसी मनुष्यका दर्शन करना हो तो सामनेसे और पीछेसे ऐसे दोनों ओरसे उसका दर्शन करना आवश्यक है। पर जिस समय सामनेसे दर्शन किया जाता है उस समय उसके पृष्ठभागका दर्शन नहीं होता। तथा जिस समय पृष्ठभागका दर्शन होता है उस समय उसके सामनेके भागका दर्शन नहीं होता। अर्थात् मनुष्य वस्तुके आधे भागका ही एक समय दर्शन कर सकता है। इसलिये उसका संपूर्ण दर्शन करना हो तो एक ही समय उसके दोनों भागोंकी कल्पना एक स्थानपर करनी चाहिये। (१) यह इसका सामनेवाला भाग है, (२) यह इसका पीछेका भाग है, (३) दोनों भाग मिलकर यह संपूर्ण पुरुष हुआ है। ये तीनों कल्पनाएं पृथक् हैं, पर इन तीनों भावोंका साक्षात्कार मनुष्य करता है, तब उसको सत्य वस्तुका ज्ञान होता है। वस्तु एक है पर उसके ये तीन भाव हैं। यही तीनोंमें एकका और एकमें तीनों भावोंका दर्शन करना है। ऐसा किये बिना संपूर्ण वस्तुका दर्शन ही नहीं होता।

और एक उदाहरण देखिये। रुपयेकी एक ओर राजाका चित्र है, उसी रुपयेकी दूसरी ओर वेलपत्तीका चित्र है। एक ही रुपयेके ये दो भाव सत्य हैं। प्रत्यक्ष हैं। पर संपूर्ण रुपयेमें ये दोनों भावोंका विंदन हुआ है यह भी उतना ही सत्य है। इन तीनों भावोंमें रुपयेका जो दर्शन होता है वह संपूर्ण रुपयेका दर्शन है। मनुष्य जिस रुपयेका नित्य दर्शन करते हैं, वह रुपयेके आधे भागका ही दर्शन है। मनुष्यकी आंख एक ही समय संपूर्ण रुपयेका दर्शन करनेमें असमर्थ है। दृष्टी दृश्यके आधे भागका ही दर्शन करती है। दिव्यदृष्टी ही संपूर्ण वस्तुका दर्शन कर सकती है जो तीनों भावोंका दर्शन है वही सत्य और संपूर्ण दर्शन है।

और एक उदाहरण यहां विचारार्थ लेते हैं। एक शक्करका बतासा है। इसमें वजन है, वही जड भाव है, इस जड भावके टुकडे हो सकते हैं। बतासेके दो चार दस वीस या अधिक टुकडे होते हैं। यही बतासेका क्षर भाव है। हरएक मनुष्य इस क्षर भावका दर्शन करता है। इसी क्षर भावमें व्यापक मीठास है। मीठापन है। क्षर भावका अनुभव, इसके वजनका या जडभावका अनुभव हाथ करता है। पर उसके साथ रहे मीठासका अनुभव जिह्वा करती है और कहती है कि इसमें मीठास ओतप्रोत भरी है। बतासेके जितने चाहिये उतने टुकडे करो, उन सबमें मीठास अटूट है। यह मीठास अक्षर भाव है। पाठकोंको घन भाव और उसमें व्यापनेवाला मीठेपनका भाव ऐसे दोनों भाव बतासेमें हैं, इसका पता लग सकता है। हरएक मनुष्य यह जान सकता है। पर ये दोनों भाव बतासेमें विन्दन होकर मिले रहते हैं। अर्थात् एक जड भाव, दूसरा मीठासका भाव और तीसरा जिसमें ये दोनों भाव मिले हैं वह बतासा है। यही तीन भावोंमें वस्तुके एकत्वका भाव है और वस्तुके एकत्वमें तीनों भावोंकी सत्ता है। बतासेमें रहनेवाला वजन बतानेवाला दृश्य घन भाव, दूसरा मीठासका अदृश्य भाव और इन दोनों भावोंका विन्दन जहां हुआ है वह पूर्ण बतासेका तीसरा भाव है। यही तीनोंका एक भाव है और एकमें तीन भाव हैं। तीन भावोंको पृथक् देखना यह सर्व साधारण दृष्टी है और तीनों भावोंके विन्दनको एक रूपमें देखना यह दिव्यदृष्टी है। पृथग्भावोंका दर्शन साधारण दृष्टीसे होता है और पृथग्भावोंमें एकत्वका दर्शन दिव्य दृष्टीसे होता है।

विश्वमें जडभाव है, जिसको प्रकृति कहते हैं। इस जड भावमें जडता, घनता, वजन तथा स्थूलता आदि भाव हैं। इसको प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, पञ्च स्थूलभूत आदि कहते हैं। इसके टुकडे होते हैं, इस कारण इसको 'क्षर' कहते हैं। दूसरा भाव इसीमें है जिसको अक्षर भाव कहते हैं, इसको आत्मा जीवात्मा आदि नाम देते हैं। जडके विभाग होते हैं, वैसे इसके टुकडे नहीं होते। यह चेतन, स्फूर्ति देनेवाला, ज्ञान ग्रहण करनेवाला ज्ञानरूपी है। इनको क्षर पुरुष और अक्षर पुरुष कहते हैं। इनका वर्णन गीतामें ऐसा किया है–

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ १६ ॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ १७ ॥
यस्मात् क्षरमतीतोऽहं अक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥

म० गी. १५।१६-१८

ये श्लोक इसी लेखके प्रारंभमें दिये थे। अब पुनः यहां दिये हैं क्योंकि इनके कुछ विशेष शब्द हैं जो बडे महत्त्वके हैं, जिनके मननसे 'तीनोंमें एक और एकमें तीन' यह कूट सुलझा जा सकता है। इन श्लोकोंका कथन ऐसा है-

'क्षर और अक्षर ये दो पुरुष इस लोकमें हैं। क्षर सब भूत हैं और कूटस्थ आत्मा अक्षर है। उत्तम पुरुष परमात्मा इनसे भिन्न है जो अव्यय ईश्वर तीनों लोकोंमें व्यापकर उनका धारण करता है, यह ईश्वर क्षर पुरुषसे श्रेष्ठ है और अक्षरसे भी उत्तम है इसलिये लोकमें और वेदमें इसे पुरुषोत्तम कहा गया है।'

पुरुषका अर्थ

यहां 'क्षर पुरुष, अक्षर पुरुष और उत्तम पुरुष' ऐसे तीन पुरुष कहे हैं। यहां तीनोंको पुरुष ही कहा है अतः पुरुष पदका अर्थ देखनेकी यहां आवश्यकता है।

पुरि वसति, पुरि शेते

ऐसी इस पुरुष शब्दकी व्युत्पत्तियां हैं। जो पुरिमें रहता है, जो पुरिमें सोता है, जो पुरिमें व्यापता है वह पुरुष है। यह 'उत्तम पुरुष' परमात्मा, परमेश्वर, परब्रह्म है वह सर्व विश्वमें व्यापक है इसलिये विश्वरूपी पुरिमें व्यापनेके कारण पुरुष कहा गया यह ठीक ही है। दूसरा 'अक्षर पुरुष' यह जीव आत्मा है, यह जीव शरीरमें व्यापता है। इसलिये इसको भी पुरुष कहा जा सकता है। परन्तु यहां केवल जीव शरीरमें व्यापनेका ही भाव नहीं है परंतु जीव भावसे सर्वत्र व्यापक होनेसे इसको यहां अक्षर पुरुष कहा है। गीतामें 'नित्यः सर्वगतः स्थाणुः (गी. २।२४) यह आत्मा-शरीरधारी आत्मा नित्य और सर्वगत है ऐसा कहा है। यह जीवभावकी सर्वगतता सर्वत्र जीवभावकी स्थिति होनेके कारण मानी गयी है। जीवात्मा तो अपने शरीरमें व्यापता है। वैसा प्रत्येक जीवके शरीरमें जीव व्यापता है इस कारण भी यह व्यापक है। अब क्षर पुरुष जो सर्व भूतोंके रूपोंसे विश्वमें जड करके प्रसिद्ध है, पञ्चमहाभूत सृष्टीके जड सृष्टीके रूपसे प्रसिद्ध है, वह किस पुरिमें व्यापनेके कारण 'पुरुष' कहलाता है? यह प्रश्न यहां विशेष महत्त्वका है। जीवात्मा जीव शरीरमें और परमात्मा विश्वरूपी शरीरमें व्यापक है, पर जड शरीर किसमें व्यापक है? जिस कारण इस जडको भी 'पुरुष' कहा है। जड-चेतन, क्षर-अक्षर, प्रकृति-पुरुष ये परस्परके साथ परस्पर व्यापक हैं, अर्थात् ये परस्पर मिले जुले हैं, यह भाव यहां है। इस तरह परस्परके साथ मिले जुले होनेसे दोनोंकी परस्पर व्यापकता है, इसीलिये यहां 'अक्षर पुरुष-जीवात्माको जैसा पुरुष कहा है, उसी तरह क्षर पुरुष-प्राकृतिक शरीरको भी पुरुष कहा है।' जहां शरीर है वहां जीव है और जहां जीव है वहां शरीर है। इसका अर्थ ये परस्पर व्यापक है अतएव ये पुरुष हैं।

वस्तुतः प्रकृति व्याप्य है और आत्मा व्यापक है। इस कारण आत्माको ही पुरुष कहना चाहिये। परंतु यहां प्रकृतिको भी पुरुष कहा है। इसका हेतु यह है कि आत्मा और प्रकृति मिली जुली हैं। इसलिये इनको परस्पर व्यापक कह सकते हैं। जिस तरह कीचडमें मिट्टी और जल परस्पर मिले जुले रहते हैं अतः परस्पर संमिश्रित हैं ऐसा कहा जाता है, उसी तरह प्रकृतिरूपी मिट्टीमें आत्माका जल मिला है। इन दोनोंका कीचड बना जिससे सब सृष्टी बनी है। इस तरह ये दोनों परस्परके साथ मिले हैं, अतः इनको पुरुष कहा है।

यहां एक जड भाव है जिसको क्षर पुरुष कहा है, जिसके टुकडे होते हैं। जिससे दूसरा अक्षर पुरुष है जो आत्मभाव है। एक क्षरभाव और दूसरा आत्मभाव है। ये दोनों भाव जहां मिले हैं वह परमात्मभाव है। यह पूर्ण पुरुष है, पुरुषोत्तम है। इसमें दोनों भाव संमिलित होनेसे यह पुरुषोत्तम है और दोनोंसे श्रेष्ठ है। केवल क्षर पुरुषसे यह पुरुषोत्तम श्रेष्ठ है, इसका कारण यह है कि इसमें जीवात्मभाव मिला है। इसी तरह अक्षर पुरुषसे भी यह उत्तम है इस कारण यही है कि यह पुरुषोत्तम जीवभाव और जडभावको अपने अन्दर संमिलित करके रहता है।

दाये शरीरसे पूर्ण शरीर श्रेष्ठ है और बाये शरीरसे भी उत्तम है, क्योंकि दाये और बाये शरीर इसमें मिले हैं। दोनोंका संमीलन एक एककी अपेक्षासे श्रेष्ठ होना स्वाभाविक है। इसी तरह क्षर पुरुष, और अक्षर पुरुष ये दोनों

पुरुषोत्तममें मिले जुले होनेके कारण इनमेंसे प्रत्येककी अपेक्षासे पुरुषोत्तम श्रेष्ठ है यह तो स्वयं सिद्ध ही है ।

इस विश्वमें स्थानस्थानमें ' तीनमें एक और एकमें तीन ' इस तरह रहे हैं । तीनों भावोंका पृथक् पृथक् दर्शन करना यह सामान्य दृष्टी है और तीनोंके अन्दर एकत्वका दर्शन करना यह दिव्यदृष्टी है ।

जो अर्जुनको दिव्यदृष्टी दी वह यही है । इससे अनेकत्वमें एकत्वका दर्शन होता है । जल और मिट्टी ये दो पदार्थ हैं, परंतु कीचडमें दोनों एकरूप होते हैं । पति, पत्नी पृथक् हैं, परंतु कुटुंब कहनेसे उनका मीलन एकत्वमें हो जाता है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य पृथक् हैं पर आर्य कहनेसे इन तीनोंमें एकत्व दीखने लगता है । राजा और प्रजा पृथक् रहते हैं, परंतु राष्ट्र कहनेसे उसमें दोनों आ जाते हैं । यह तो व्यावहारिक भेदोंमें अभेद दर्शन है । परंतु क्षर-अक्षर-पुरुषोत्तममें तो इससे भी एकरूपता है जो इससे पूर्व बतासेके उदाहरणसे बतायी है । बतासा एक वस्तु है, उसका एक भाव वजनदार तथा टुकडे होनेवाला है और दूसरा भाव मीठासका है, ये दोनों भाव बतासेमें एकरूप हो जाते हैं ।

इसी तरह क्षर भाव और अक्षर भाव ये दोनों पुरुषोत्तम भावमें एकरूप हो जाते हैं । संपूर्ण विश्वरूप एक ही बतासा है, इसमें एक क्षरभाव है और दूसरा जीवभाव है । ये दोनों पृथक् अनुभवमें आते हैं, परंतु परमात्मभावमें ये एकत्र मिल जाते हैं । क्षर-अक्षर, जड-चेतन, प्रकृति-पुरुष ये भेद कल्पनामें अनुभव किये जाते हैं । परंतु ये भेद वस्तुगत: नहीं हैं । परमात्मा, परब्रह्म, परमेश्वर एक अद्वितीय वस्तु है, इसका एक भाव क्षर प्रकृति है और दूसरा भाव अक्षर आत्मा है ।

जीव भाव

यहां जीवभाव क्या है इस विषयमें पाठकोंके मनमें संदेह हो सकता है । गीतामें कहा है—

ममैव अंशो जीवलोके
जीवभूतः सनातनः । गीता १५।७

' ईश्वरका सनातन अंश जीवलोकमें जीव बना है । ' यहां जीवको ईश्वरका अंश बताया है । अर्थात् अंशभाव जीव है, पूर्णभाव परमेश्वर है । तत्त्वदृष्टीसे अंश और अंशी एक ही हैं । वेदमें भी ऐसा ही कहा है —

अमृतस्य पुत्राः । ऋ. १०।१३।१

' अमृतके-अमर ईश्वरके पुत्र ' ये जीव हैं । पिता परमात्मा है और उसके पुत्र ये जीव है ।

त्वं पितासि नः ॥ ऋ. १।३१।१०
आध्रस्य चित् प्रमतिरुच्यसे पिता । ऋ. १।३१।१४
आदिः पिता प्रमतिः...मर्त्यानां । ऋ. १।३१।१६
अदितिर्माता स पिता स पुत्रः । ऋ. १।८९।१६; अथ. ७।६।१
द्यौर्मे पिता जनिता । ऋ. १।१६४।३३
सखा पिता पितृतमः पितॄणां । ऋ. ४।१७।१७
हव्यवाडग्निरजरः पिता नः । ऋ. ५।४।२
पिता माता मधुवचाः सुहस्ताः । ऋ. ५।४३।२
त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन् मानुषाणाम् । ऋ. ६।१।५
न हि त्वदन्यन्मघवन् न आप्यं वस्यो अस्ति पिता च न ॥ ऋ. ७।३२।१९; अथ. २०।८२।२
पिता च तन्नो महान् यजत्रा । ऋ. ७।५२।३
त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ । वा.य. १७।२७ ऋ. ८।९८।११ अथ. २०।१०८।२
विश्वस्य राजा...पिता मतीनां । ऋ. ९।७६।४
पिता देवानां जनिता विभूवसुः । ऋ. ९।८६।१०
त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः पिता वचः । ऋ. १०।६४।१०
ऋषिर्होता न्यसीदत् पिता नः । ऋ. १०।८१।१
यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यो देवानां नामधा एक एव तं सं प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥ ऋ. १०।८२।२
यज्ञो मनुः प्रमतिर्नः पिता हि कं । ऋ. १०।१००।५
अत्रा नो विश्पतिः पिता । ऋ, १०।१३५।१
उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा ॥ ऋ० १०।१८६।२
स नः पिता जनिता स उत बन्धुः । अथ० २।१।३
तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्च । अथ० १५।५।२

इन मंत्रोंमें परमेश्वरको हमारा पिता कहा है। यहां इन मंत्रोंमें, परमेश्वरको, पिता, माता, बन्धु, जनिता (जनक) सखा, बुद्धिदाता (प्रमतिः), श्रेष्ठ पिता (पितृतमः) कहा है। पूर्व स्थानमें 'अमृतस्य पुत्राः' (ऋ. १०।१३।१) में अमर परमेश्वरके ये सब पुत्र हैं ऐसा कहा था। उसीका स्पष्टीकरण ये मंत्र कर रहे हैं और ये कह रहे हैं कि वह परमेश्वर हम सबका मातापिता है। पिता पुत्रका संबंध 'अंश–अंशी' भावका ही संबंध रहता है। पिताके संपूर्ण शरीरका सत्व पुत्रके शरीरमें अंशरूपसे आता है। यदि परमेश्वर हम सबका पिता है और उस परमपिताके हम सब पुत्र हैं, तो यह निःसंदेह सत्य है कि उसका अंश हमारे अन्दर अवश्यमेव है। इसीलिये गीतामें कहा है कि 'मेरा अंश यहां जीव हुआ है।' (गी. १५।७) परमेश्वरमें ३३ देवतायं सूर्य वायु जल आदि हैं, मनुष्यके देहमें भी उन्हीं देवताओंके अंश हैं। इस तरह जितने तत्त्व ईश्वरमें हैं उतने जीवके देहमें हैं। इस रीतिसे यह पिता पुत्रका संबंध है। पिताका अंश वीर्यरूपसे पुत्रमें आता है और वही यहां शरीर रूपसे विस्तारित होता है।

अंश और अंशी एक जातीके होते हैं। वैसे ही परमेश्वर और जीव आत्मतत्वकी दृष्टिसे सजातीय हैं। आत्मा कहनेसे परमेश्वर तथा जीवका बोध होता है। प्रकृतिको आत्माका शरीर माना है। इस तरह प्रकृति+[जीव+परमात्मा] ये तीन होनेपर भी एक होते हैं, विश्वशरीरी परमेश्वर है यह प्रतिपादन इससे पूर्व किया ही है। परमेश्वरके विश्व–शरीरका वर्णन वेदोंमें तथा अन्यत्र भी बहुत है, उसमेंसे कुछ वर्णन अब यहां देखिये—

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी सूर्यचन्द्रौ दिशः श्रोत्रे वाग् विवृताश्च वेदाः। वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा॥

मुण्डक २।१।४

इन्द्रादयो बाहव आहुरुक्ता कर्णौ दिशः श्रोत्रममुष्य शब्दः। नासत्यदस्रौ परमस्य नासे घ्राणोऽस्य गन्धो मुखमग्निरिद्धः॥

श्री० भागवत २।१

'अग्नि मुख, सूर्यचन्द्र ये नेत्र हैं, दिशाएं कान हैं, वायु प्राण है, अन्तरिक्ष हृदय है, पृथिवी पांव है यह सर्वभूतोंके अन्तरात्माका विश्वरूप शरीर है।' यह वर्णन मुण्डक उपनिषद और श्रीमद्भागवतमें है। वेदके मंत्रोंमें भी ऐसा ही वर्णन है—

यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अंगे सर्वे समाहिताः॥१३॥
यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अंगे गात्रा विभेजिरे॥२७॥
यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः।
अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥३३॥

अथर्व १०।७

'जिस परमात्माके अंगमें–शरीरमें–तैंतीस देव रहते हैं। जिस परमात्माके शरीरमें तैंतीस देव शरीरके अवयव बनकर रहे हैं। जिसका एक आंख सूर्य है और दूसरा आंख चन्द्रमा हुआ है, अग्नि जिसका मुख बना है, उस श्रेष्ठ ब्रह्मके लिये मेरा प्रणाम है।' इस तरह परमेश्वरके शरीरका वर्णन वेदमंत्रों, उपनिषद्वचनों और अन्य ग्रंथोंमें है। अर्थात् सब प्राकृतिक विश्व उसका शरीर है। जैसा मनुष्य आत्मा और शरीर मिलकर होता है, वैसा ही परमेश्वर परमात्मा और विश्व मिलकर होता है। यह विश्व उसका शरीर है और सब जीव उस परमेश्वरके विश्वदेहमें रहनेवाले अणुजीव हैं। इस वर्णनसे 'प्रकृति+जीव+परमात्मा' मिलकर एक वस्तु होती है। तीन होते हुए एक है और एक होते हुए तीन हैं। इसीलिये गीतामें, उपनिषदोंमें तथा वेदमंत्रोंमें कई वचन एकत्व बोधक, कई वचन द्वैत बोधक और कई वचन त्रैतबोधक होते हैं। किसी भी वचनको प्रक्षिप्त या विरुद्ध माननेकी जरूरत नहीं है। यह तो दृष्टिबिन्दुके कारण भिन्नता दीखती है, वस्तुतः तीनों प्रकारके वचन तीन दृष्टि-बिन्दुओंसे ही हैं।

जहां एकत्वदर्शनका वर्णन है वह तीनों भावोंका एक रूपमें विन्दनका वर्णन है, जहां द्वैतका वर्णन है वह प्रकृति-पुरुषका विभिन्न वर्णन है और जहां त्रैतका वर्णन है वहां वह प्रकृति–जीव–ईश्वरके विभिन्न भावोंका वर्णन है।

एक ब्रह्मके दो रूप हैं ऐसा स्पष्ट वर्णन बृहदारण्यक उपनिषदमें है–

द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च, मर्त्यं च अमृतं च। यदेतन्मूर्तं यदन्यत् वायोश्चान्तरिक्षाच्च।

बृ० उ० २।३।२

' एक ब्रह्मके दो रूप हैं, एक मूर्त रूप है और दूसरा अमूर्त है, एक मर्त्य है और दूसरा अमर है। वायु और अन्तरिक्ष रूप जो है वह अमूर्त है, और पृथ्वी आप रूप जो है वह मूर्त है।' यह स्थूल सूक्ष्म सब जो है वह सबका सब ब्रह्मका ही रूप है। जो ब्रह्म है वही आत्मा, परमात्मा, परमेश्वर है। इसका भाव पूर्वोक्त रीतिसे समझना चाहिये।

परमेश्वरके विश्वशरीरकी कल्पना आलंकारिक ही क्यों न हो, पर वह वेद-उपनिषद्-गीता-पुराणोंमें एक जैसी है। इसलिये वह एक दृष्टिबिन्दु है ऐसा मानना युक्ति युक्त है।

वस्तुतः देखा जाय तो प्रकृति, जीव, परमेश्वर ये तीन पृथक् तीन पात्रोंमें रखे जानेवाले पदार्थ नहीं हैं। इनका संमिश्रण ही जहां देखो वहां है। किसी स्थानपर भी केवल प्रकृति, केवल जीव तथा केवल परमेश्वर मिलेगा ही नहीं। इनकी विभिन्नता कल्पनासे ही जानी जाती है। सर्वत्र जो अनुभवमें आता है वह इन तीनोंका मिश्रण ही है। यही तीनोंका विंदन, या मिश्रण ब्रह्मनामसे वर्णन किया गया है।

जिस तरह मिट्टी, जल और अग्निका मिश्रण कीचड नामसे कहा जाता है, जिस कीचडसे ईंटें बनकर उन ईंटोंसे छोटे मोटे मंदिर बनाये जाते हैं। इस कीचडमें मिट्टी है, जल है और अग्नि भी है। अग्नि होनेके कारण कीचडका रूप दिखाई देता है। उसके अन्दर जल होनेके कारण वह जल मिट्टीके परमाणुओंको इकट्ठा पकड रखता है, और मिट्टी घन-या जड है ही। इस तरह तीनोंका यह मिश्रण, या यह कीचड, बडे बडे मंदिर बनाता है, वैसा ही प्रकृति-जीवन-ईश्वरका यह मिश्रण जिसका नाम ब्रह्म है विश्वके विविध रूप बना देता है। यहां 'जीव' के स्थानपर हमने 'जीवन पद रखा है। यह जीवन ही प्रकृतिके परमाणुओंको एकत्रित करता है और परमात्मा सबका धारण करता है।

अस्तु। इस तरह तीनमें एक है और एकमें तीन हैं। इसलिये हम कह सकते हैं, एक दृष्टीसे त्रैतवाद भी सत्य है, दूसरी दृष्टिसे द्वैतवाद भी सत्य है और तीसरी दृष्टिसे एकत्ववाद भी सत्य है, इसीको कई अद्वैतवाद भी कहते हैं। इसीलिये एक ही ग्रंथमें इन तीनों वादोंके वचन मिलते हैं। जहां जिस दृष्टिसे जो वचन आया है वहां वह उसी दृष्टीसे देखना चाहिये। ऐसा देखनेसे इन वचनोंमें परस्पर विरोध दीखेगा नहीं और सत्य वस्तु तत्त्वका सामंजस्य ही दीखेगा।

जिस वचनकी जो दृष्टी होगी, वह वचन उसी दृष्टीसे ठीक प्रतीत होगा। भिन्न दृष्टीसे वही वचन सदोष दिखाई देगा। कई लोग ये वचन गीतामें और उपनिषदोंमें देखकर एकदम इनमें प्रक्षेप हैं, ये परस्पर विरुद्ध हैं ऐसा बोलते हैं, इतना ही नहीं परंतु वे वचन वहांसे हटा देने चाहिये, ऐसा भी बोलते हैं। परंतु जब वे लोग वेद मंत्रोंमें वैसे ही वचन देखते हैं, तब वे उन मंत्रोंके अर्थोंको बदल देनेका यत्न करते हैं। पर यह सब वास्तव दृष्टिकोण न समझनेका फल है, यह सब संगति लगानेके अज्ञानका फल है। इसलिये पाठकोंको यह दृष्टिकोण समझनेका यत्न करना चाहिये। एकवार यह समझमें आगया, तो वह भूला नहीं जायगा और वचनोंकी संगति लगाना सुकर होगा।

खींचातानीका स्वरूप

दृष्टिकोण न समझनेके कारण बडे बडे लोगोंने किस तरह खींचातानी की है यह संक्षेपसे यहां बताते हैं। ईश उपनिषदमें संभूति और असंभूतिका भाव 'समाज और व्यक्ति' है, वह श्रीमान् शंकराचार्यजीने लिया नहीं। दूसरा ही अर्थ किया, पर वह तृतीय मंत्रमें लगा नहीं, इसलिये 'अत्र अकारलोपो द्रष्टव्यः' ऐसा लिखा। अर्थात् संभूतिके स्थानपर 'असंभूति' और असंभूतिके स्थानपर 'संभूति' लेना चाहिये। ऐसा लिखा। वेदमंत्रके पदोंकी तोड मरोड करनेकी जिसमें आवश्यकता होती है वह मत ही त्याज्य होता है। दृष्टिबिन्दुका ध्यान न करनेसे इनको ऐसा करना पडा।

उपनिषदोंमें 'तत्त्वमसि' यह महावाक्य (छां. ६।८।७) है। इसके पद 'तत्+त्वं+असि' ये ही हैं। पर श्री मध्वाचार्यजी शुद्ध द्वैत माननेवाले ठहरे। इनको 'वह ब्रह्म तू है' यह अर्थ पसंद नहीं था। इसलिये इन्होंने 'तत्त्वं-असि' अर्थात् 'तूं तत्त्व है' ऐसा अनर्थ किया। व्याकरणसे 'तत्+त्वं+असि' ये भी पद होते हैं और 'तत्त्वं असि' ये भी होते हैं। पर पूर्वापर अर्थकी संगतिसे 'तत्+त्वं+

असि ' अर्थात् ' वह ब्रह्म तू है ' ये ही पद ठीक हैं । पर ये पद श्री मध्वाचार्य माननेको तैयार नहीं ।

अपने मतको उपनिषदोंके वचनपर लादना यह है, अतः यह ठीक नहीं । वास्तविक ऐसा करनेकी भी आवश्यकता नहीं है । क्योंकि किस तरह एकत्व है और किस तरह द्वैत है यह समझनेसे ऐसा करनेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती । और एक उदाहरण देखिये—

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् ।

ऋ० १०।९०; वा. य. ३१

' पुरुष ही यह सब है, जो भूतकालमें था और जो भविष्य कालमें होगा ' यह वाक्य तो एकत्व प्रतिपादक स्पष्ट है । पर जो द्वैती और त्रैती हैं उनको यह एकत्ववाद पसंद नहीं । इसलिये वे इस वाक्यका अर्थ इस तरह बदल देते हैं । ' जो भूतकालमें था और जो भविष्यकालमें होगा वह सब (पुरुषः करोति) पुरुष ही बनाता है । ' करनेकी क्रियाका अध्याहार करके ये लोग इस वेदवचनका अर्थ बदल देते हैं । और जो वचन स्पष्ट रीतिसे एकत्व-वादका प्रतिपादन करता है, उसीको द्वैतवादका प्रतिपादक बना डालते हैं । पर ऐसा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । एकत्वका यह एक दृष्टिकोण है । अथर्ववेदमें कहा है–

एकं यदङ्गं अकृणोत् सहस्रधा । अथर्व० १०।७।९

' अपना एक अंग उसने सहस्रधा विभक्त किया, ' जिससे यह सब विश्व बना है । तथा—

पादोऽस्य इह अभवत् पुनः । ऋ० १०।९०।४

' इसका एक अंश यहां वारंवार उत्पन्न होता है । ' अर्थात् यह अंश सहस्रधा विभक्त होकर इस विश्वकी नाना मूर्तियां बनती हैं । यही बात अन्य रीतिसे वेद वचन स्पष्ट करते हैं–

इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते । ऋ०

' प्रभु अपनी अनन्त शक्तियोंसे अनन्तरूप बनता है । ' ये सब वचन हैं जो बताते हैं कि वेदमंत्रोंमें एकत्ववाद है इसलिये एकत्व प्रतिपादक मंत्रोंको तोड मरोडकर बदल देनेकी आवश्यकता नहीं है । केवल जिस दृष्टिकोणसे वह वचन लिखा है वह उसी दृष्टिकोणसे समझनेकी आवश्य-कता है । वह दृष्टिकोण ध्यानमें रखनेसे सब वचन यथा-स्थान ठीक दीखते हैं और सब विरोध मिट जाता है तथा सब वचनोंकी सुयोग्य संगति लग जाती है ।

एकत्ववादको माननेवाले प्रकृति–पुरुष–परमेश्वरका सर्वत्र विंदन देखते हैं और उससे सब सृष्टी बनी है ऐसा मानते हैं । एकत्ववादके सब वचनोंका भाव यही है । जगत्में किसी भी स्थानपर केवल प्रकृति नहीं है, केवल पुरुष नहीं है और केवल परमेश्वर भी नहीं है । मिलेजुले ये तीनों भाव सर्वत्र हैं, और मिलेजुले रूपमें ये सर्वत्र और सदा रहते हैं । इन तीनों भावोंका संमीलन अथवा संविदन सर्वत्र है और यही एकमात्र सर्वत्र है अतः यही एक वस्तु है । इसीका नाम एकत्व दर्शन है: ।

तत्र को मोहः कः शोकः
एकत्वमनुपश्यतः । वा. य. ४०; ईश ५

' इस एकत्वका दर्शन करनेवालेको शोक और मोह किस तरह हो सकते हैं । ' इस एकत्वके दर्शनसे मनुष्य शोक मोहके परे होता है । वह सदा आनंदमें रहता है । इस एकत्वको माननेवाले एकत्ववादी इस एक वस्तुके तीनों भावोंको मानते ही हैं । इसलिये इस एक वस्तुमें तीन भाव सदा ही रहते हैं । अर्थात् यह एकत्ववाद त्रैतका विरोधी नहीं है । भावात्मक त्रैत है और वस्तुरूप एकत्व है ।

जो सर्वत्र जड-चेतन, प्रकृति–पुरुष, क्षर–अक्षर, क्षेत्र–क्षेत्रज्ञका दर्शन करते हैं वे द्वैतवादी हैं । ये पुरुषमें जीव तथा ईश्वरका भेद अंश–अंशी रूपसे है ऐसा मानते हैं और जड और चेतन इन दो तत्त्वोंको मानते हैं । इनके द्वैतमें जीव और शिवका भावात्मक भेद रहनेके कारण इनमें भी त्रैत है, तथा प्रकृतिको पुरुषकी शक्ति माननेके कारण शक्ति-मानसे शक्ति पृथक् न रहनेके कारण इस वादमें भी एकत्व-वादकी झलक रहती है । अर्धनारी नटेश्वरका रूपक इनका मत बतानेवाला है । नर–हरका अलंकार भी इनका ही है । इन द्वैतवादियोंने इस रूपकसे त्रैत और एकत्वकी व्यवस्था अपनेमें उत्तम रीतिसे की है ।

त्रैतमें प्रकृति, जीव और ईश्वरका अस्तित्व है और यह प्रत्यक्ष सबको दीखता ही है, इस कारण इसका विरोध प्रत्यक्ष व्यवहारमें तो कोई करता ही नहीं ।

इस तरह तीनों वादोंकी व्यवस्था है और ये तीनों वाद पृथक् पृथक् दृष्टिबिन्दुओंसे अपने अपने स्थानमें सत्य है।

पाठक इस तरह इस त्रैत, द्वैत, अद्वैत और एकत्ववादको समझें और वेदादि वचनोंका योग्य तात्पर्य ध्यानमें लें और व्यर्थ बढाये झगडोंसे दूर रहें ।

एकत्ववादमें भी भावात्मक तीन पदार्थ हैं, द्वैतमें भी आत्मामें दोनों आत्माओंका अन्तर्भाव होनेसे तीन पदार्थोंके तीन भाव हैं और त्रैतमें भी तीनों भावोंमें तीनोंका अनुभव है। इस कारण किसी भी मतका स्वीकार करनेसे " जडभाव, जीवभाव और शिवभाव " इन तीनों भावोंको मानना ही पडता है । इसलिये भावात्मक तीन पदार्थोंका त्याग किसी भी मतमें नहीं है । तो भी तीन दृष्टिबिंदुओंसे ज्ञान दिया जाता है, इसलिये किसी समय एकत्वका दर्शन होता है, किसी समय द्वैत और त्रैतका होता है । वह बताना ही चाहिये । वह तत्त्वज्ञानके ग्रंथोंमें बताया है । इसलिये दृष्टि-बिन्दुके भेदके कारण एक वस्तुमें भी तीन भाव दीखते हैं और तीन भावोंमें भी एक वस्तु दीखती है। अतः ये तीनों प्रकारके वर्णन विभिन्न दृष्टिबिन्दुओंसे ठीक हैं, न ये परस्पर विरुद्ध हैं और नाही इनमें कोई वचन प्रक्षिप्त है। यह इस तरह जानना दिव्यदृष्टि है । यह न जाननेसे वचनोंकी संगति ठीक तरह नहीं लग सकती।

इसलिये पाठकोंसे प्रार्थना है कि वे इस दिव्यदृष्टिको प्राप्त करें और धर्मग्रंथोंके वचनोंकी उत्तम संगति लगाकर उन वचनोंसे सत्यज्ञान प्राप्त करनेका यत्न करें । सत्यज्ञान ही सबका तारण कर सकता है ।

आजके युगके आचार्य महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी आर्य समाजके प्रवर्तक हैं । ये त्रैतमतके समर्थक हैं ऐसा सब मानते हैं। विशेषतः सब आर्यसमाजी अपने आपको 'त्रैतवादी' कहते हैं, पर आर्यसमाजमें प्रवेश करनेके दश नियमोंमें जो पहिला ही नियम है वह 'एकतत्ववादी' ही है । देखिये यह नियम ऐसा है—

आर्यसमाजका पहिला नियम

" सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्यासे जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है ।"

इसमें स्पष्ट कहा है कि सब सत्यविद्या अर्थात् 'वेदादि शास्त्र' और विद्यासे समझे जानेवाले 'प्रकृति-जीव-ईश्वर' ये पदार्थ, इन सबका आदि मूल एकमात्र परमेश्वर है। अर्थात् परमेश्वरसे वेदरूपी सत्य शास्त्र प्रकट हुए और इस सत्य विद्यासे समझे जानेवाले प्रकृति जीव ईश्वर ये सब पदार्थ भी प्रकट हुए हैं । इन सबका आदि मूल एक मात्र परमेश्वर है । यह वैदिक एकत्ववाद ही है ।

इस तरह त्रैतवादी महर्षि दयानंद सरस्वतीजी अपने नियमोंमें एकत्व सिद्धान्तको दर्शाते हैं । प्रकृति परमेश्वरकी शक्ति है और जीव अंश है ऐसा माननेसे एक ही परमेश्वरका अस्तित्व रहता है । प्रकृति-जीव-ईश्वर ये तीन भाव हैं, पर पुरुषोत्तम एक ही है । यह जो हमने पूर्व स्थानमें लिखा है कि " एकमें तीनोंका विन्दन " और " तीनोंमें एककी सत्ता " यह जो मानते हैं वे ही इस नियमको इस तरह लिख सकते हैं । इससे त्रैत पक्षका सर्वथा विनाश नहीं होता और एकत्व पक्षका भी सर्वथा अभाव नहीं होता । परंतु ये दोनों पक्ष अपने अपने दृष्टिबिन्दुसे यथास्थान विद्यमान रहते ही हैं । यह सच्चा दृष्टिकोण है यही वेद-उपनिषद-गीतामें सिद्धान्तरूपसे कहा है ।

इसी कारण महर्षिके हस्ताक्षरोंसे यह नियम इस तरह लिखा गया है। यह महत्त्वपूर्ण दृष्टी है और इसको ठीक तरह समझनेसे त्रैत और एकत्ववादका सामंजस्य उत्तम रीतिसे समझमें आ सकता है । त्रैत और एकत्व ये वाद एक ही वस्तुका वर्णन कर रहे हैं, परंतु दृष्टिबिंदु विभिन्न है । सापेक्षताका यही सिद्धान्त है ।

अब हम कुछ अन्य उद्धरण इन्हींके ग्रंथोंसे देते हैं ।

पंच महायज्ञ विधि (सं. १९३१)

" इसमें कोई शंका करे कि ईश्वरने किस वस्तुसे जगत्को रचा है? उसका उत्तर यह है कि (अभीद्धात् तपसः) ईश्वरने अपनी अनन्त सामर्थ्यसे सब जगत्को रचा है ।

वेदान्त ध्वान्त निवारण (सं. १९३१)

इसी प्रकार पृष्ठ ५ पर लिखा है कि (ब्रह्म वा इदमित्यादि) सृष्टिके आदिमें एक सर्व शक्तिमान ब्रह्म ही वर्तमान था । सो अपने आत्माको (अहं ब्रह्मास्मीति तदेववित) स्वरूपका विस्मरण उसको नहीं होता । उस परमात्माके सामर्थ्यसे ही सब जगत् उत्पन्न हुवा है ।

पृष्ठ १६ पर लिखा है कि " हे परमेश्वर अपने स्वसामर्थ्य तथा अनन्त पराक्रमसे भूमि, जल, स्वर्ग, तथा दिव अर्थात् भूमिसे लेकर सूर्य पर्यन्त सब जगत्को बनाया है । रक्षण, धारण तथा प्रलय भी आप ही करते हैं । (ऋ. १।४।१३।१२)

वेद विरुद्ध मतखंडन (सं. १९३२)

शताब्दी संस्करण पृष्ठ ७९१ पर लिखा है कि "सब प्रकारके सामर्थ्य निराकार परमेश्वरमें नित्य ही विद्यमान हैं, उससे ही साकार जगत्की उत्पत्ति होती है। जैसे प्रमाण तैत्तिरीय उपनिषद् —' तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशस्सम्भूत :, आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी, पृथिव्या ओषधयः, ओषधिभ्यो अन्नम्, अन्नाद्रेतः, रेतसः पुरुषः, स वा एष पुरुषो अन्नरसमयः' अर्थात् उसकी इस आत्मासे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल, जलसे पृथ्वी, पृथ्वीसे औषधि, औषधिसे अन्न, अन्नसे वीर्य, वीर्यसे शरीर उत्पन्न होता है, सो यहां यह शरीर अन्न रसमय कहाता है।

उपदेश मंजरी (सं० १९३४)

पृष्ठ १४ पर लिखा है कि "ईश्वर परम पुरुष सनातन ब्रह्म सब पदार्थोंका बीज है"।

पृष्ठ २० पर लिखा है कि "अखिल जीव और निर्जीव पदार्थ ईश्वरने अपनी सामर्थ्यसे निर्माण किये हैं।"

पृष्ठ १२४ पर लिखा है कि "ईश्वर-सामर्थ्य ही, जगत् उत्पत्तिकी सामग्री है और **उसका सामर्थ्य ही जगत्का उपादान कारण है**। यह सामर्थ्य प्रगट हुवा तभी सृष्टि हुई और ईश्वरमें इसका लय होनेसे प्रलय होता है।"

इससे स्पष्टतः सिद्ध है कि महर्षिके इन व्याख्यानोंसे भी उनके ऐक्यवादी होनेकी पूर्ण रूपसे पुष्टि होती है।

इन उद्धरणोंके शब्दप्रयोग पूर्वोक्त मतका ही प्रतिपादन करते हैं। अस्तु। इस विषयमें मतभेदके लिये स्थान हो सकता है यह हम जानते हैं। किसी विद्वानको यह अमान्य हुआ तो भी कोई हर्ज नहीं है।

एक ही सत् है।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ ४६ ॥

ऋ. १।१६४

(एकं सत्) एक ही सत् है, दो या तीन या इनसे अधिक सत् वस्तुएं नहीं हैं। केवल एक ही अद्वितीय सत् है। इसी अद्वितीय एक मात्र सत्का वर्णन (विप्राः बहुधा वदन्ति) ज्ञानी लोग अनेक प्रकारसे करते हैं, अनेक नामोंसे इसी एकका वर्णन करते हैं। वे ज्ञानी इसी एक अद्वितीय सत्को अग्नि, यम, मातरिश्वा, इन्द्र, मित्र, वरुण, दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान् कहते हैं।

इस तरह 'एक सत्' है यह घोषणा वेद करता है। उसी एक सत्में अग्निके गुण देखकर ज्ञानी लोग उसीको अग्नि बोलते हैं, उसीमें वायुके गुण देखकर उसीको वायु या मातरिश्वा कहते हैं, उसीमें परमैश्वर्यके भाव देखकर उसीको इन्द्र कहते हैं। उसीमें मित्रताका भाव देखकर उसको मित्र कहते हैं। इस तरह विश्वमें जो देवताएं दिखाई देती हैं वे इसी एक सत्के रूप हैं, ऐसा अनुभव करके ज्ञानी लोग अनेक नामोंसे उसी एक सत्का वर्णन करते हैं। अग्नि वायु जलके जो वर्णन हैं, वे सब वर्णन उसी एक सत्के ही वर्णन हैं क्योंकि अनेक रूपोंमें वही एक सत् विश्वरूपमें खडा है।

इस मंत्रका अर्थ कई लोग ऐसा करते हैं कि अग्नि आदि नामोंसे उसी एक सत् अर्थात् परमात्मा या परब्रह्मका वर्णन होता है। परंतु यह सत्य नहीं है। वह परमात्मा, परब्रह्म या सत् अग्नि आदि रूपोंमें प्रकट होता है, इसलिये अग्निका वर्णन उसीका वर्णन होता है। इसी तरह जल उसका रूप है इसलिये जलके वर्णनसे उसीका वर्णन होता है। इसी तरह अन्यान्य देवताओंके वर्णनका भाव समझना योग्य है। इसीलिये वेद कहता है—

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥

वा. यजु. ३२।१

(तत् एव अग्निः) वह ब्रह्म ही अग्नि है अथवा (अग्निः तत् एव) अग्नि निःसंदेह वह ब्रह्म है, किंवा (अग्निः एव तत्) अग्नि ही वह ब्रह्म है। इसी तरह, वही सूर्य है, वही वायु है, वही चन्द्रमा है, वही शुक्र है, वही (ब्रह्म) ज्ञान है, वही जल है, वही प्रजापति है।

अर्थात् पृथ्वी, आप्, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, वृक्ष, प्रस्तर, पाषाण, पर्वत, नदियां आदि सब उसी परब्रह्मके रूप हैं, यह संपूर्ण विश्व ही परब्रह्मका रूप है। विष्णु सहस्रनामके प्रारंभमें ही कहा है कि—

"विश्वं विष्णुः"

विश्व ही विष्णु है, विश्व ही विष्णुका स्वरूप है। अर्थात् विश्वके सब पदार्थ विष्णुके शरीरके अवयव हैं।

वेदोंमें सूर्य उसके आंख है, वायु उसका प्राण है, अग्नि उसका मुख है, पृथिवी उसके पांव है, दिशाएं उसके कान हैं, इस प्रकारका वर्णन आता है।

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः।
अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥
अथर्व

ये मंत्र परमात्माके विश्वरूपी देहका ही वर्णन कर रहे हैं। सूर्य चन्द्र अग्नि आदि देवताएं उसके शरीरके अवयव हैं। इससे 'सत् एक है उसीका वर्णन अग्नि जल वायु आदिके वर्णनसे होता है' इस मंत्रका स्पष्टीकरण वेदद्वारा ही हुआ है। इसका सत्य अर्थ वेद मंत्रोंद्वारा इस तरह प्रकट हुआ।

एक ही सत् है जो 'प्रकृति-जीव-शिव' इन तीन रूपोंमें प्रकट हो रहा है यह जो त्रैत और एकत्वका विचार चल रहा है, वह इस रीतिसे वेदमंत्रोंद्वारा स्पष्ट हो रहा है। स्वयं वेद ही अपना भाव अनेक मंत्रोंके द्वारा प्रकट कर रहा है। श्री महर्षि स्वामी दयानन्दजी सरस्वती यह सब जानते थे इसलिये उन्होंने पहिले नियममें 'सबका आदि मूल परमेश्वर है' यह एकत्ववादका प्रतिपादन किया है और उसीके तीनों रूपोंका 'प्रकृति-जीव-शिव' का वर्णन त्रैतवाद स्वीकार करके किया है। इस तरह त्रैतमें एकत्व है और एकत्वमें त्रैत है यह वैदिक दृष्टि है। यही हरएक ज्ञानीको स्वीकार करने योग्य है।

किरणवाले तीन देव

त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम्। विश्वमेको अभिचष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम्॥
ऋ. १।१६४।४४

(केशिनः त्रयः) बालवाले अथवा किरणवाले तीन देव हैं। वे (ऋतुथा विचक्षते) ऋतुके अनुसार देखते हैं अथवा दिखाई देते हैं। (संवत्सरे) वर्षमें (एषां एकः वपते) इनमेंसे एक बीज बोता है। ऋतुके अनुसार बीज बोता है। (शचीभिः) अपनी शक्तियोंसे इनमेंसे (एकः) एक (विश्वं अभिचष्टे) विश्वको देखता है। और (एकस्य ध्राजिः ददृशे) एककी गति तो दीखती है। पर (रूपं न) उसका रूप दिखाई नहीं देता।

यहां किरणोंवाले तीन देवोंका वर्णन है। ये तीनों किरणोंवाले देव हैं, ये प्रकाशमान हैं। प्रकृतिको "दैवी प्रकृति" कहा जाता है। अर्थात् यह प्रकृति चमकनेवाली है, तेजस्विनी है, किरणोंवाली है। दूसरा जीवात्मा है वह आत्मा होनेसे ही प्रकाशमान है अर्थात् किरणोंवाला है। परमात्मा तो सबका प्रकाशक है ही। अर्थात् ये तीनों (केशिनः) किरणोंवाले हैं। 'केशिन्' शब्द बालवाला इस अर्थमें प्रयुक्त होता है। किरण ही बाल कहे जाते हैं।

इनमेंसे एक (ऋतुथा विक्षते) ऋतुके अनुसार कार्य करता है ऐसा दीखता है। सब सृष्टीभरमें ऋतुके अनुसार फलफूल आते हैं, उगना फल देना और मरना यह हरएकके लिये ऋतुके अनुसार हो रहा है। सृष्टिमें (जायते) जन्मना, (अस्ति) होना, (वर्धते) बढना, (विपरिणमते) परिणाम होना, (अपक्षीयते) क्षीण होना और (विनश्यति) नाश होना ये छः ऋतु दिखाई देते हैं। हरएक पदार्थके साथ ये लगे हैं। हरएक पदार्थ इन छः ऋतुओंमेंसे गुजर रहा है। अर्थात् यहां ऋतुओंके अनुसार कार्य हो रहा है।

(एषां एकः वपते) इनमेंसे एक बीज बोता है जिसके बीजसे सृष्टी होती है और बढती है। बीज देनेवाला पिता कहलाता है। जो पिता होता है वही बीज देता है, वीर्य सिंचन करता है और माता उसका धारण करती है और प्रजाकी उन्नति करती है।

यही (एकः शचीभिः विश्वं अभिचष्टे) एक अपनी शक्तियोंसे संपूर्ण विश्वका निरीक्षण करता है। अपने किरणोंसे सबको प्रकाशित करता है। 'शची' महाशक्ति है। उसके पास अनंत महती शक्तियां हैं। उन शक्तियोंसे वह विश्वको शक्तिमान करता है। सर्वत्र उसकी शक्तियोंका संचार हो रहा है। अग्निमें तैजस शक्ति, वायुमें जीवनीय शक्ति, अन्नमें प्राणधारण शक्ति इस तरह अनेक शक्तियां वह प्रदान करता है और विश्वका पालन पोषण और संवर्धन करता है।

इसकी (ध्राजिः) गति दीखती है। कहां क्या हो रहा है यह दीखता है। अग्नि जलता है, जल बहता है,

वायु जीवन देता है इस तरह सर्वत्र गति हो रही है। वह गति इसीकी शक्तिसे हो रही है। यह गति दीख रही है, परंतु यह परमात्मा स्वयं (न रूपं) अरूप है, इसका रूप नहीं है। परंतु इस अरूपका यही विश्व रूप है क्योंकि इसकी शक्तिसे ही यह शक्तिशाली हो रहा है, इसीके जीवनसे यह जीवित रहा है। यह अपनी शक्तियोंसे अग्नि रूप, जलरूप, वायुरूप होकर यहां खडा है।

इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते। ऋग्वेद

'इन्द्र प्रभु अपनी महती शक्तियोंसे अनन्तरूप होकर चलता है।' यहां 'माया' पद शक्तिका वाचक है। और यही प्रभु 'पुरु-रूपः' बहुरूपी होकर विश्वमें घूम रहा है। अरूपका यह विश्वरूप है। यही एक होता हुआ बहु हुआ है।

इस मंत्रमें "तीन देव हैं और वे किरणोंवाले हैं" ऐसा कहा है और यह देव अपनी शक्तियोंसे (पुरु-रूपः) बहुत रूप धारण करता है ऐसा भी कहा है।

इस रीतिसे 'एकके तीन और तीनोंमें एक' है यह बात सिद्ध होती है। यह वेदकी परिभाषा है। यह जानकर ही वेदका ज्ञान समझना चाहिये।

इस रीतिसे 'प्रकृति-जीव-परमेश्वर' ये तीन भाव बिलकुल नहीं हैं ऐसा कोई नहीं कहता। परंतु जिस तरह 'बतासे' में 'जडता+मीठास' ये दोनों भाव रहते हैं और मिलेजुले रहते हैं, तथा इन दोनोंमें पूर्ण बतासा भी साथ साथ विद्यमान रहता है। वैसे ही 'जडभाव+चेतनभाव' ये दोनों भाव सर्वत्र मिलेजुले रहे हैं और उन दोनोंमें 'शिव' भाव व्याप रहा है। तीनोंका कीचड सर्वत्र है। यह समझना चाहिये।

यहां हमने 'प्रकृति-जीव-ईश्वर' का कीचड ऐसा शब्द प्रयोग किया है। कीचड शब्द योग्य नहीं और उच्च भावदर्शक भी नहीं है। परंतु दूसरा शब्द सूझता नहीं है। कीचडमें 'मिट्टी+जल+अग्नि' ये तीन पदार्थ रहते हैं। पर सूखनेपर जल दूर हो सकता है। ऐसी पृथकता 'प्रकृति-जीव-ईश्वर' के विन्दनमें नहीं है। 'विन्दन' शब्द अच्छा है। मिश्रीके ढेलेमें 'ढेला+मीठास' इन दोनोंका विन्दन हुआ है, कीचड नहीं। विन्दनमें दोनों रहते हैं, पर एक रूप होकर रहते हैं। मिश्रीका ढेला हाथमें लेनेसे हाथको उसके वजन (जडभाव) का पता लगता है। जिह्वाको उसकी मीठासका ज्ञान होता है, नेत्रको उसका रूप दीखता है। तीन इंद्रियोंने तीन भावोंका अस्तित्व देखा, अतः ये तीनों भाव पृथक् हैं। पर 'मिश्री' वस्तु एक ही है। मिश्रीकी दृष्टीसे 'एकं सत्' है, परंतु हाथ 'जडत्व' कहता है, नेत्र 'रंगरूप' कहता है और जिह्वा मीठास कहती है। ये अनुभव पृथक् हैं, पर एक ही वस्तुके, एक ही सत्के ये तीनों भाव हैं।

इस तरह यहां समझना चाहिये। तीन भावोंमें एक ही वस्तुका साक्षात्कार होता है।

संपूर्ण विश्वमें 'जड+जीव+शिव' ये तीनों भाव मिले जुले हैं। देहधारी जीव मर गया, तो उसके शरीरसे मुख्य अधिष्ठाता जीव चला जाता है, परंतु उस मृत देहके प्रत्येक अणुमें अनेक जीव रहते हैं। वे सब उस देहके सडनेपर छोटे जीवोंके रूपोंसे प्रकट होते हैं। अर्थात् मृत देहमें भी करोडों सूक्ष्म जीव होते हैं। इसी तरह जिसको निर्जीव लकडी या सुवर्णादि धातु कहते हैं, पर कीडा लकडी खाता है, सुवर्णादि धातु मनुष्य सेवन करता है। ये निर्जीव दीखनेवाले पदार्थ सजीव शरीरके सजीव विभाग बन जाते हैं। इस तरह विचार करनेपर मालूम होगा कि जीव भाव सर्वत्र और सदा रहता है। एक अधिष्ठाता जीव चला जाता है, परंतु वहां सैकडों अणुजीव रहते हैं। शिव भाव तो सर्वत्र है। इन तीनोंका विन्दन होता है, मेल मिलाप होता है उसका नाम 'ब्रह्म' है। देखिये—

सर्वं खलु इदं ब्रह्म।
नेह नानास्ति किंचन।

'यह सब ब्रह्म है, यहां नाना पदार्थ नहीं है।' यह सब वर्णन तीनोंके विन्दनका है। इस विन्दनका सत्य तत्व न समझनेसे द्वैताद्वैतके वादविवाद उत्पन्न हुए हैं, जिनकी कोई आवश्यकता नहीं है। जिस रीतिसे यहां प्रतिपादन किया है, उस तरह पाठक समझनेका प्रयत्न करेंगे, तो पाठकोंके मनमें किसी तरह इस एकत्व, द्वैत और त्रैतके विषयमें विवाद उत्पन्न ही नहीं होगा। वेद उपनिषद आदि ग्रंथोंके वचनोंके सब वचन ठीक रीतिसे समझमें आ जायंगे और सब वचनोंकी उत्तम संगति लग जानेसे शुद्ध ज्ञान प्राप्त होनेका आनन्द भी प्राप्त होगा। यही आनन्द प्राप्त करनेके लिये मनुष्यका जन्म है।

प्र श्न

१ एकत्व, अद्वैत, द्वैत, त्रैतका आशय क्या है ?

२ कितने पदार्थ नाना दर्शनोंने माने हैं ?

३ भिन्नता और एकता किस तरह सापेक्ष होती है ?

४ वस्तुगत भेद और भावगत भेदका स्वरूप क्या है ?

५ एक ही ग्रंथमें एकत्व और अनेकत्वका वर्णन क्यों आता है ?

६ गीतामें एकत्व और अनेकत्व बतानेवाले वचन कौनसे हैं ?

७ उपनिषदोंमें एकत्व और अनेकत्व दर्शानेवाले कुछ वचन हों तो बताइये ।

८ क्या ये परस्पर विरोधी हैं या इनकी संगति किसी तरह लग सकती है ?

९ अद्वैत व एकत्वमें क्या भेद है ?

१० त्रैतका स्वरूप क्या है ?

११ ईश्वरको अनन्तरूप जिनमें कहा है वे तीन चार वचन लिखिये ।

१२ दो सुपर्ण कौन हैं और वे कहां रहते हैं ?

१३ पुरुष ही यह सब विश्व है ऐसा बतानेवाला मंत्र बताइये ।

१४ दो अज और एक अजा कौनसी है ?

१५ भोक्ता भोग्य और प्रेरक कौन है ?

१६ 'एकमें तीन और तीनोंमें एक' यह किस तरह संभव है ?

१७ जड, चेतन और आनंद ये तीन गुण किसके हैं ? क्या ये गुण एक ही वस्तुके हो सकते हैं ?

१८ 'पुरुष' पदका अर्थ क्या है ?

१९ जीव भाव क्या है ? जीवके गुण कौनसे हैं ?

२० परमेश्वर पिता, माता, मित्र, भाई आदि है इस भावको बतानेवाले मंत्र कौनसे हैं ?

२१ सर्व भूतान्तरात्माका वर्णन कीजिये ।

२२ मूर्त ब्रह्म और अमूर्त ब्रह्म कौनसा है ?

२३ ईश्वरको बहुरूप, पुरुरूप, सर्वरूप, अनंतरूप, विश्वरूप क्यों कहा है ? अरूपका रूप कैसा है ?

२४ आर्य समाजका पहिला नियम क्या है ? वह क्या एकत्वका प्रतिपादन करता है वा त्रैतका प्रतिपादन करता है ?

२५ ईश्वरने अपने सामर्थ्यसे सृष्टीकी रचना की है इसका आशय क्या है ?

२६ 'एकं सत्' का अर्थ क्या है ?

२७ एकके बहु कैसे बने ?

२८ तीन देव किरणोंवाले कैसे हैं और वे क्या करते हैं ?

२९ क्या यह विश्व परमेश्वरका शरीर है ?

३० अशरीरीका शरीर कैसा होता है ?